आपसी सौहार्द एवं दायित्वता का यह अर्थ नहीं कि कोई एक पक्ष दूसरे के मातहत है। पैगम्बर मुहम्मद (स०) घर के कामों में मदद करते थे हालांकि उनपर समाज की ज़िम्मेदारियों का जो बोझ था एवं उन्हें जिन मसलों का सामना करना पड़ता था वे बहुत बड़े थे।"

सामाजिक एवं नैतिक ज़िम्मेदारियों का बोझ मर्द और औरत दोनों पर है। पति-पत्नी को ऐसी हरकतों एवं चेष्टाओं से बचना चाहिये जो दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाए या उससे उनकी नैतिकता पर गलत शक किया जाए।

औरतों की अभिव्यक्तिक स्वतंत्रता मर्दों के बराबर है। पूर्व मुस्लिम समाज में औरतें सार्वजनिक जीवन के हर पहलू में हिस्सा लेती थीं, विशेष रूप से आपातकालीन स्थितियों में। इस बात का उल्लेख कुरआन एवं इस्लामी इतीहास में मिलता है कि औरतों ने न सिर्फ अपने विचार को स्वतंत्रतापूर्वक रखा बल्कि खुद पैगम्बर मुहम्मद (स०) और दूसरे नेताओं के साथ संवेदनशील बहसों में हिस्सा भी लिया। उन्हें कभी लोहे की सलाखों के पीछे बंद नहीं किया गया और न ही बेकार समझा गया।

आर्थिक पहलू

इस्लाम औरत को अनुबंध करने, उद्यम के, कमाने एवं स्वतंत्र रूप से जमा करने के एक समान अधिकार देता है। एक औरत का जीवन, उसकी जायदाद और उसका सम्मान इस्लाम की दृष्टि में उतने ही अहम हैं जितने मर्द के हैं। अगर ऐसे ही मामलों में वह कोई गुनाह करती है तो उस पर उतना ही जुर्माना है जितना कि मर्द पर है, न ज़्यादा न कम। अगर उसके साथ कुछ गलत होता है, या उसे तकलीफ पहुँचाई जाती है तो उसे मर्द के बराबर ही मुआवज़ा दिया जाएगा।[५]

इस्लाम ने औरतों को विरासत में हिस्सा दिया है। इस्लाम से पहले न सिर्फ औरतें इस हक से वंचित थीं बल्कि मर्द खुद उन्हें अपनी जायदाद समझ कर उनका बँटवारा करते थे। इस्लाम ने उन्हें एक हस्तांतरणीय संपत्ति से हटा कर खुद वारिस बना दिया, तथा महिलाओं के निहित व्यक्तित्व को स्वीकार किया। चाहे औरत एक बीवी हो या माँ, बहन हो या बेटी, उसे मरने वाले की जायदाद में से कुछ हिस्सा अवश्य मिलता है, यह हिस्सा मरने वाले से उसके रिश्ते एवं वारिसों की संख्या के अनुसार तय होता है। यह हिस्सा सिर्फ और सिर्फ उसी का होता है तथा कोई भी उससे उसका यह हक छीन नहीं सकता और न ही उसे इससे वंचित कर सकता है। फिर चाहे मरने वाले ने उसके खिलाफ कोई वसियत की हो या उसके हिस्से को किसी और के नाम कर दिया हो, इस्लामी कानून उसे इसकी अनुमती नहीं देता।

औरतों को हर प्रकार की आर्थिक ज़िम्मेदारी से बरी किया गया है। एक बीवी होने के नाते, औरत को यह हक है कि वह निकाह के समय अपने पती से अपनी इच्छानुसार महर की रकम माँग सकती है, जो सिर्फ उसी का होगा। इसके साथ ही औरत के पालनपोषण तथा खर्च की पूरी ज़िम्मेदारी मर्द को दी गई है। औरत को काम करने या परिवार के खर्च में हिस्सा लेने की कोई आवश्यक्ता नहीं रखी गई है। औरत को पूरी स्वतंत्रता है कि जितना कुछ भी शादी से पहले उसके पास था उसका प्रयोग शादी के बाद भी अपनी इच्छानुसार कर सकती है तथा उसकी चिज़ों पर पती का कोई अधिकार नहीं बनता। एक बहन या बेटी की हैसियत से उसकी सुरक्षा एवं भरणपोषण की ज़िम्मेदारी बाप फिर भाई पर होती है। यह उसकी आज़ादी है, अगर वह काम करना चाहे या स्वावलंबी बनना चाहे और परिवार की ज़िम्मेदारियों में हाथ बँटाना चाहे तो उस पर कोई रोक नहीं, लेकिन वह अपनी मर्यादा, सुरक्षा एवं इज़्ज़त का पूरा खयाल रखे।

अब यह तो स्पष्ट हो चुका है कि इस्लाम में औरतों का स्थान बहुत ऊँचा है। इस्लाम ने उन्हें ऐसे अधिकार दिए हैं जो उनकी ज़िम्मेदारियों से पूरी तरह मेल खाते हैं। इस्लाम ने जो कुछ भी कानून उनके लिए बनाए हैं वे औरतों को रक्षा प्रदान करते हैं तथा अनचाहे हालात एवं जीवन के विभिन्न मोड़ पर उनका बचाव करते हैं।

हवाला :

१) (स०): सलामती हो उनपर।
२) सही बुखारी
३) अहमद, निसाई, बैहकी
४) अहमद
५) कुरआन, २:१७८;४:४५;९२-९३

al-birr foundation

औरतों और मर्दों के अधिकार एवं ज़िम्मेदारियाँ बराबर तो हैं परंतु एक समान नहीं। क्योंकि मर्द और औरत शारीरिक एवं मानसिक रूप से भिन्न हैं इसलिए यह अंतर समझ में आनेवाली चीज़ है।

इस्लाम में औरतों का स्थान, यह आज के समय में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा बना हुआ है। इसके दो कारण हैं, एक तो आज के अधिकतर मुसलमानों का वो रवैया जो इस्लाम से बिल्कुल भी मेल नहीं खाता दूसरे पश्चिमी समाज में फैली यह गलतफहमी कि इस्लाम महिलाओं को गुलाम समझता है।

इस्लाम के प्राथमिक स्रोतों के अध्ययन और जिस समाज में इस्लाम को लागू किया गया था उसमें औरतों को प्राप्त स्थान के विश्लेषण से तो यह साबित होता है कि वास्तविकता में इस्लाम औरतों के लिए आशिर्वाद है।

दि कल्चरल एटलस ऑफ इस्लाम का लेखक लिखता है कि:

“इस्लाम से पूर्व एक औरत को उसके माँ-बाप खानदान के लिए बदनामी समझते थे अत: बच्ची को जीवित ही दफन कर देते थे। एक जवान औरत सिर्फ एक वासनापूर्ती की वस्तू थी, जिसे खरीदा-बेचा और विरासत में दिया जाता था। इस्लाम ने औरत को निकृष्टता एवं कानूनी अक्षमता के स्थान से उठा कर समाज एवं खानदान में एक प्रभावशाली तथा प्रतिष्ठावान स्थान प्रदान किया है।”

औरतों और मर्दों के अधिकार एवं ज़िम्मेदारियाँ बराबर तो हैं परंतु एक समान नहीं। क्योंकि मर्द और औरत शारीरिक एवं मानसिक रूप से भिन्न हैं इसलिए यह अंतर समझ में आनेवाली चीज़ है। अगर इस फर्क को समझ लिया जाए तो किसी के खयाल में भी यह बात नहीं आ सकती के इस्लाम में औरतों को मर्दों से हीन समझा गया है। ऐसी गलती शायद इस लिए होती है कि इस्लाम मर्द और औरत के बीच “साम्यता” की बात करता है न की “समानता” की जिसे कि आम तौर पर लोग जीवन के छोटे-छोटे मामलों में अपनाने की कोशिश करते हैं। जबकी इस्लाम इसे जीवन में पूर्ण रूप से लागू करता है।

आध्यात्मिक पहलू

महान कुरआन के पवित्र शब्द एवं मुसलमानों का पूर्व इतिहास इस बात का गवाह है कि जीवन में औरत का महत्त्व उतना ही है जितना की पुरुष का है।

इस्लाम इस सोच का कड़ा विरोध करता है कि हव्वा ने आदम को खुदा की अवज्ञा पर उकसाया था जिसके कारण उनका पतन हुआ। कुरआन कहता है कि दोनों ने अवज्ञा की और इस सोच का भी विरोध किया कि स्त्री बुराई का स्रोत है।

एक ऐसी दुनिया जिसमें औरत मर्द के लिए यौन संतुष्टि की वस्तु से बढ़ कर कुछ नहीं थी, ऐसा समय कि जिसमें धार्मिक हलकों के बीच इस बात पर बहस होती थी कि औरत इंसान है भी या नहीं जिसमें आत्मा होती है, इस्लाम नें इस बात का ऐलान किया:

> *“हे लोगो ! हमने तुम्हें एक (ही) मर्द और औरत से पैदा किया।”* (कुरआन ४९:१३)

इस्लाम में औरतों का स्थान

> *“हे लोगों ! अपने उस पालनहार से डरो जिसने तुम को एक जान से पैदा किया और उसी से उसकी बीवी को पैदा किया और दोनों से बहुत से मर्द-औरत फैला दिये और उस अल्लाह से डरो जिसके नाम पर एक-दूसरे से माँगते हो और रिश्ता तोड़ने से (भी बचो), बेशक अल्लाह तुम पर संरक्षक है।”* (करआन ४:१)

मर्द और औरत एक ही वंश से हैं, अत: उनके एक जैसे ही अधिकार एवं ज़िम्मेदारियाँ हैं, और उनके रब ने कुरआन में उनसे वादा किया है कि:

> *“तुम में से किसी अमल (कर्म) करने वाले के अमल को चाहे वह मर्द हो या औरत में कभी बेकार नहीं करता, तुम आपस में एक-दूसरे से हो।”* (कुरआन ३:१९५)

अत: इस्लामी परंपरा के अनुसार, एक औरत की अपनी स्वतंत्र पहचान है। वह अपने अधिकारों की स्वयं ज़िम्मेदार है और उस पर उसके अपने ही नैतिक एवं आध्यात्मिक कर्तव्यों का बोझ है।

सामाजिक पहलू

औरतों को भी शिक्षा का उतना ही अधिकार है जितना मर्दों को है। आज से १४०० वर्ष पहले ही पैगम्बर मुहम्मद (स०)[१] ने स्पष्ट कर दिया था कि **“ज्ञान का प्राप्त करना हर मर्द और औरत पर अनिवार्य है।”** यह आदेश एकदम स्पष्ट था और इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि मुस्लिम समाज में अधिकतर नें इस पर अमल किया।

इस्लाम ने समाज में औरतों के स्थान को बुलंद किया और उन्हें मर्दों के बराबर खड़ा किया, यहाँ तक कि कुछ मामलों में खास तौर पर माँ के रूप में उन्हें मर्दों पर भी प्रधानता दी गई है। अत: जब एक व्यक्ति नें पैगम्बर मुहम्मद (स०) से पूछा **“मेरे अच्छे बरताव का सबसे अधिक हकदार कौन है?”** पैगम्बर मुहम्मद (स०) ने उत्तर दिया **“तुम्हारी माँ”**, उसने पूछा **“फिर कौन?”** पैगम्बर मुहम्मद (स०) ने कहा **“तुम्हारी माँ”**, उसने दोबारा पूछा **“फिर कौन?”** पैगम्बर मुहम्मद (स०) ने उत्तर दिया **“तुम्हारी माँ”**। उस व्यक्ति ने चौथी बार पूछा **“फिर कौन?”** पैगम्बर मुहम्मद (स०) ने उत्तर दिया **“तुम्हारा पिता”**[२]।

एक दूसरे अवसर पर एक व्यक्ति पैगम्बर मुहम्मद (स०) के पास आया और फौजी अभियान पर जाने की इच्छा व्यक्त की, पैगम्बर मुहम्मद (स०) ने उससे पूछा कि क्या तुम्हारी माँ है? उसने उत्तर दिया कि हाँ है, तो मुहम्मद (स०) ने उसे सलाह दी कि **“अपनी माँ के साथ रहो, क्योंकि उसके पैरों के नीचे स्वर्ग है।[३]”**

एक औरत का बेटी की हैसियत से माता-पिता पर यह अधिकार है कि वे उसे बेटे के समान ही प्यार दें तथा वैसा ही व्यवहार करें। पैगम्बर मुहम्मद (स०) ने ऐसे लोगों को स्वर्ग की खुशखबरी दी है जो अपनी बेटीयों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं तथा लड़को को उनपर वरीयता नहीं देते।[४]

इस्लाम औरत को पूरी आज़ादी देता है कि वह शादी की पेशकश को स्वीकार करे या नहीं। अत: उसकी सहमती शादी की वैधता के लिए अनिवार्य है। क्योंकि शादी आपसी शांती, प्रेम एवं करुणा पर आधारित है। डॉ जमाल बदवी जो कि कनाडाई मूल के मुस्लिम विद्वान हैं अपनी पुस्तक **“जेन्डर इक्विटी इन इस्लाम”** में लिखते हैं:

“पती परामर्श एवं दया के ढांचे में रहते हुए सारे परिवार की परवरिश, रक्षा एवं सम्पूर्ण नेतृत्व करता है। पती-पत्नी के